

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार, परम शांतस्वरूप,
जिनवाणी रहस्य प्रकाशक, असाधारण प्रज्ञास्वरूप
पूज्य भाईश्री शशीभाई के मंगलकारी ८९ वें जन्मजयंती
महोत्सव प्रसंग पर कोटि कोटि वंदन!!



निश्चय रत्नत्रय प्राप्त, परमागम-सुधा के रहस्यज्ञ, जिनमार्ग प्रति
अखंड निष्ठावान, जिनकी निष्कारण करुणा का नित्य स्तवन करने
में भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है, मोहस्वयंभूरमण समुद्र को
भूजा से तीर गये ऐसे हे प्रखर पुरुषार्थ के स्वामी! भाव अप्रतिबद्धरूप
से विचरनेवाले, आपके प्रति अचल प्रेम और सम्यक् प्रतीति हो,
इस भावना सहित आपके चरणों में भक्ति-पुष्प अर्पण करते हैं!

- 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवार

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४८: अंक-२८८, वर्ष-२४, दिसम्बर-२०२१

आषाढ कृष्ण ११, गुरुवार, दि. १४-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-८७, प्रवचन-३४

‘सहजस्वरूप में रमणता कर!’ बन्धमोक्ष का विकल्प छोड़ दे। आहा...हा...!

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि तो बधियहि णिभंतु।
सहज-सरुवइ जइ रमहि तो पावहि सिव सन्तु।।
८७।।

आहा...हा...! भगवान आत्मा! ‘यदि तू बन्ध-मोक्ष की कल्पना करेगा तो तू निःसन्देह बँधेगा...’ पर्यायदृष्टि हुई न, पर्यायदृष्टि। राग का बन्ध है, वह राग छूटेगा तो मुक्ति होगी - ऐसे दो प्रकार के विचार, विकल्प का कारण हैं, विकल्प है। समझ में आया? भगवान सहजात्मस्वरूप पूर्ण शुद्ध एकरूप सहजात्मस्वरूप पूर्ण स्वरूप एकरूप का अन्दर ध्यान कर। यह मुक्ति का उपाय है।

‘बद्धउ मुक्कउ मुणहि’ यदि बन्ध और मोक्ष, दो, पर्यायदृष्टि से देखने जाएँ तो निश्चय से बँधेगा। ‘णिभंतु’ भ्रान्ति बिना तुझे बन्ध होगा। आहा...हा...! (कोई कहे) बन्ध है नहीं? सुन तो सही, प्रभु! यहाँ तो व्यवहारनय का विषय बन्ध-मोक्ष, उसे छुड़ाते हैं। उसका आश्रय करने से विकल्प होता है। यह ‘योगसार’ है। योगस्वरूप एकाकार में लीन होना, उसमें भेद करके बन्ध और मोक्ष का विचार न करना, उसका नाम योगसार/ स्वरूप की एकता के भाव को कहते हैं।

‘यदि तू बन्ध-मोक्ष की कल्पना करेगा...’

आचार्य भी कड़क हैं न! देखो, ‘णिभंतु बधियइ’ निःसन्देह बँधेगा। भगवान आत्मा एक स्वरूप के अतिरिक्त दो प्रकार का विचार होगा तो निश्चय से विकल्प होगा और विकल्प होगा तो बन्ध होगा। भले वह विकल्प शुभ है क्योंकि बन्ध और मोक्ष का विचार, वह कोई अशुभ नहीं है परन्तु है तो शुभ, तथापि है बन्ध का कारण। आहा...हा...! समझ में आया?

‘जइ सहज-सरुवइ रमहि’ यदि तू भगवान सहजात्मस्वरूप में रमणता करेगा... एकरूप प्रभु... पर्यायदृष्टि को छोड़कर, व्यवहारनय के विषय को छोड़कर, यदि अकेले भगवान पूर्णानन्द प्रभु में रमण करेगा तो शान्त मोक्ष को प्राप्त करेगा। शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्ति... निर्वाण... पूर्ण शान्ति को प्राप्त करेगा। (उस विकल्प में) बन्ध होगा। दो बातें की हैं।

देखो, एक श्लोक में क्या कहा? बन्ध और मोक्ष - ऐसी पर्यायदृष्टि का विचार करेगा तो निःसन्देह बँधेगा। एकस्वरूप सहजानन्द प्रभु, एकरूप परमात्मा अपने स्वरूप में रमेगा तो मोक्ष हो जाएगा। बन्ध और मोक्ष की यह व्याख्या की। बन्ध है, पर्याय में रुकता है, वह भावबन्ध है, कर्म का बन्ध होता है, वह दूसरी बात; और राग से छूटकर वीतराग पर्याय पूर्ण हो तो मोक्ष भी है परन्तु उस पर्याय का पर्याय में मोक्ष और

पर्याय में बन्ध है। अंश में मुक्ति और अंश में बन्ध – ऐसा लक्ष्य करने से तो निर्भ्रान्त / निःसन्देह बँधेगा। देखो, इसमें किस प्राणी को मारा? किसे बचाया? किसने मारा? कि बँधेगा? भगवान उसका हेतु है न! तेरा स्वरूप अखण्ड ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, उसकी रमणता कर तो तुझे संवर-निर्जरा होगी और मुक्ति होगी। शान्त... शान्त... शान्त... अकषाय परिणमन पूर्ण होगा और मुक्ति होगी। यह भावबन्ध और मोक्ष दो पर्याय का लक्ष्य करेगा तो निश्चय से वास्तव में राग होकर बँधेगा।

समझ में आया? पर्यायदृष्टि-व्यवहारनय का आश्रय करने से बन्ध होता है, बस! यह सिद्ध करना है।

अपना प्रयोजन पर्याय के लक्ष्य से सिद्ध नहीं होता क्योंकि जो निर्मलपर्याय प्रगट होती है, उस पर्यायमें से पर्याय नहीं होती। समझ में आया? एक न्याय तो 'नियमसार' में पचासवीं गाथा में ऐसा भी कह दिया है कि अपनी पर्याय क्षायिक समकित की हो तो भी परद्रव्य है। क्षायिक समकित भी परद्रव्य है। उपशम, उदय (आदि) चार भाव परद्रव्य हैं- ऐसा पचासवीं (गाथा में) कहा है। क्यों? इसलिए कि जैसे परद्रव्यमें से स्वयं की नई निर्मल पर्याय उत्पन्न नहीं होती, इसी प्रकार उस पर्याय में से नई पर्याय तो उत्पन्न नहीं होती, इस अपेक्षा से चारों भावों को (परद्रव्य कहा है)। जो पर्याय के चार भाव हैं – राग, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, चारों को ही परद्रव्य कह दिया है क्योंकि चारों भावोंमें से नई पर्याय उत्पन्न नहीं होती। नई पर्याय की खान तो भगवान आत्मा ध्रुव... ध्रुव... नित्यानन्द प्रभु है, उसे स्वद्रव्य कहा। उन्हें (चार भावों को) परद्रव्य कहा है। इस अपेक्षा से परद्रव्य, हाँ! है तो उसकी पर्याय। आहा...हा...! परद्रव्य, परभाव इति हेयं – ऐसा पचासवीं गाथा में तीन बोल लिये हैं। समझ



में आया? वास्तविक तत्त्व का ख्याल न हो और उसे कल्याण हो जाए, कैसे हो? कल्याण की खान तो आत्मा है, उसकी एकरूप दृष्टि हुए बिना कल्याण का बीज कहाँ से उगेगा? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, मोक्ष का बीज कहाँ से उत्पन्न होगा?

यहाँ तो आचार्य (कहते हैं) 'निर्वाण का उपाय एक शुद्धात्मानुभव है, जहाँ मन के सर्व विकल्प...' और विचार 'बन्द हो जाते हैं, काय स्थिर होती है, वचन नहीं रहता।' यह तो ठीक, इसका कुछ नहीं। स्वानुभव का प्रकाश होता है, उसे निर्विकल्प

समाधि कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में और चारित्र के अंश में भी निर्विकल्प समाधि होती है। निर्विकल्प – रागरहित शान्ति, श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति (होवे), वह निर्विकल्प समाधि है, वही मोक्ष का मार्ग है। बहुत कठिन बात है। ऐसा क्यों कहा?

भाई! उदयति नय निक्षेप (समयसार कलश-०९) नहीं कहा? नय निक्षेप और प्रमाण भी उड़ा दे, कारण कि भेद पर तेरा लक्ष्य जाएगा तो विकल्प होगा। भगवान आत्मा में जो परिपूर्णता पड़ी है, जिसमें अनन्त गुण की एकरूपता है, उस पर दृष्टि दे, उसमें रमणता कर तो तुझे निर्वाण होगा ही। जैसे, पहले में कहा कि निःसन्देह बँधेगा... ऐसे (यहाँ कहते हैं) निःसन्देह तेरी मुक्ति होगी... शंकारहित। गुलाँट खायी न! गुलाँट खाया... समझ में आया? यह व्यवहाररत्नत्रय मुक्ति का उपाय नहीं है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मदद करता है।

उत्तर : मदद-फदद क्या करे? आहा...हा...! निमित्त, निमित्तरूप से है। निमित्तरूप का अर्थ – यहाँ कार्य होता है तो निमित्तरूप से सहकारी विकल्प है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा है नहीं; है तो वह बन्ध का

मार्ग।

मुमुक्षु : विकल्प होवे तो किञ्चित् लाभ होता है।

उत्तर : ज़रा भी लाभ नहीं है।

मुमुक्षु : अशुभ से बचता है।

उत्तर : स्वभाव की दृष्टि से अशुभ से बचता है।

यदि उससे बचे तो मिथ्यादृष्टि को भी शुभ में अशुभ से बचा कहा जाए। (मिथ्यादृष्टि) बचा ही नहीं...। भगवान आत्मा! अतीन्द्रिय आनन्द का एकरूप प्रभु, उसकी दृष्टि करने से ही और उसमें लीन होने से ही मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है। क्या हो?

मुमुक्षु : शान्त निर्वाण....

उत्तर : शान्त निर्वाण (अर्थात्) अकषाय, कषाय सब मिट गयी। कषाय की सब अग्नि शान्त हो गयी, अकेला अकषाय शान्त समुद्र फट पड़ा, वह शान्त मोक्ष है। यह कषाय वह संसार और शान्त वह मोक्ष। निर्वाणक्षेत्र का कुछ आता है न? छेदता है, ऐसी भाषा कहीं आती है। सिद्ध... सिद्ध... शब्द आता है, सब कहाँ याद रहता है? शीतलीभूत हो जाता है, ऐसा। अकषाय परिणामन शीतलीभूत शान्तदशा, वह मोक्ष... सकषायभाव, वह संसार। समझ में आया? निर्वाण... निर्वाण की कुछ व्याख्या की है। निर्वाण की कहीं व्याख्या की है। 'सर्वार्थसिद्धि' में या अन्यत्र कहीं की है। निर्वाण का अर्थ क्रिया है। ऐसा शान्त कर दिया, ऐसा कुछ आता है। मस्तिष्क में है, शान्त हो गया... हिम... हिम... ठण्डा हिम... जैसे पड़े और दग्ध कर दे, पौष महीने में ठण्डी हिम वन को जला देती है। यह ठण्डी अविकारी पर्याय जहाँ प्रगट हुई, (उसमें) संसार जला डाला... शान्त... शान्त... शान्त.... है?

मुमुक्षु : सिद्धिभूदा में आता है?

उत्तर : सिद्धिभूदा में आता है, सिद्धिभूदा में ऐसा आता है। सिद्धिभूदा में आता है ख्याल में है। समझ में आया? आहा...हा...! 'उपशम रस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में...' आता है न? कर कमल में कृपामृत, आता है न? है? ऐसा भक्त अनेक प्रकार से कहे। यहाँ तो

उपशम की बात कहनी है। उपशम अर्थात् अकषायभाव। अकषायभाव की पूर्णता, वह वीतराग। आत्मा वह अकषायस्वरूप है, ऐसा अकषायभाव पर्याय में प्रगट होना, वह शान्तभाव है। समझ में आया?

'वही आत्मस्वभाव है...' आत्मा में रागरहित... भाषा में सरल है, हाँ! पुरुषार्थ में उग्रता है। भाषा में कोई भाव आ नहीं जाते... कहते हैं कि आत्मस्वभावभाव में एकाग्र होने से रागरहित निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता होवे, वह निर्विकल्प समाधि है, वह मोक्षमार्ग है, वही आत्मस्वभाव है। रागभाव, आत्मस्वभाव नहीं; व्यवहाररत्नत्रय, आत्मस्वभाव नहीं है। आहा...हा...! व्यवहाररत्नत्रय, अनात्मभाव है; आस्रव है न! इसलिए अनात्मभाव है।

(वही) आत्मस्वभाव है। 'यहीं यथार्थ में मोक्षमार्ग है...' भगवान आत्मा अपने पूर्ण ज्ञायकस्वरूप की ओर की निर्विकल्प दृष्टि करके अन्दर स्थिर होना, वही मोक्ष का मार्ग है, यही 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकता है।' श्रावक को भी ऐसा अंश है, हाँ! 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' में कहा है, जितना मुनि का मार्ग है, उसका एक अंश श्रावक को भी है। सब ले लेना, समिति, गुप्ति आदि, हाँ! थोड़ा अंश, ऐसा पाठ है। 'अमृतचन्द्राचार्यदेव'!

'राग-द्वेषरहित वीतरागभाव है...' आत्मा के स्वभाव के आश्रय से दृष्टि-ज्ञान लीनता होना ही वीतरागभाव है। वही 'परम समता है, वही एक अद्वैतभाव है।' भाव, हाँ! पर्याय; द्रव्य तो अद्वैत है ही। अद्वैत एकरूप स्वभाव की एकता में अद्वैतभाव-विकल्परहित, भेदभावरहित अभेददशा उत्पन्न होती है, वही अद्वैतभाव है। 'वही संवर और निर्जरा तत्त्व है, इसलिए ज्ञानी को व्यवहारनय के विचार को तो बिल्कुल छोड़ देना चाहिए।' आहा...हा...! पहले बन्ध-मोक्ष की बात की थी न, वह व्यवहारनय का विचार है। यह बन्ध है, इस राग में आत्मा रुक गया है, राग से रहित होगा - ऐसी मुक्ति की पर्याय के विचार में तो निःसन्देह शुभराग होगा, और शुभराग से तुझे

बन्ध भी होगा। कहो, यह बन्ध-मोक्ष का विचार राग है।

मुमुक्षु : विचार तो जानना चाहिए।

उत्तर : नहीं, विचार का अर्थ यहाँ राग लेना, भेद पड़ा न! ज्ञान का विचार वहाँ अटक गया, रुक गया... विचार को विकल्प कहते हैं। 'राजमल्लजी' ने ऐसा लिया है। अपने भी लिया है। राजमल्लजी ने यह लिया है, विचार तक बन्ध का कारण है। विचार अर्थात्? यह तो ज्ञान की पर्याय है। लिया है, राग आता है न? भेद पड़ता है, उसे राग कहा है। राजमल्लजी ने लिया है, अपन ने भी लिया है। अपने समयसार में लिया है, पता है। भाई ने डाला है, विचार तक बन्ध का कारण है। यह भाषा शास्त्र की है, राजमल्लजी की है। विचार का अर्थ विकल्प में रुकता है वह, भेद करता है। ज्ञान नहीं, ज्ञान का तो जानने का स्वभाव है परन्तु वह ज्ञान रुक जाता है, उसे यहाँ विचार के अर्थ में (कहा है)।

'व्यवहारनय से ही यह देखा जाता है कि आत्मा में कर्मों का बन्ध है, आत्मा के साथ शरीर है, आत्मा में क्रोध-मान-माया-लोभभाव है... हम चौथे, पाँचवें, छठवें या सातवें गुणस्थान में हैं।' यह तो सब व्यवहार का विषय है, छोड़ देने का अर्थ लक्ष्य छोड़ देना। वस्तु नहीं कहीं? लक्ष्य छोड़ देना, उसका आश्रय छोड़ देना। वस्तु कहाँ चली जाएगी? 'हम मनुष्यगति में हैं, हम सैनी पञ्चेन्द्रिय हैं...' पुरुष हैं, यह सब भेद है। 'हम भव्य हैं, हम सम्यग्दृष्टि हैं, हम संज्ञी हैं...' इस प्रकार गुणस्थान तथा मार्गणा स्थानों का विचार अथवा कर्मों के आस्रवभावों का विचार अथवा चार प्रकार के बन्ध का विचार अथवा संवर, निर्जरा के कारण का विचार, यह सर्व व्यवहारनय द्वारा विचार करना चंचलताजनक है।' चंचल लिया।

'शुभोपयोगमय है, इसलिए बन्ध का कारण है।' देखो, यहाँ लिया। यह शुभोपयोगमय है, अशुभ नहीं। 'धवल' में दूसरा नहीं है... पण्डितजी ने 'धवल' नहीं पढ़ा? अपने विमलचन्द्रजी ने बहुत पढ़ा है। विमलचन्द्रजी, नहीं? पण्डितजी! विमलचन्द्रजी नहीं?

उन्होंने बहुत पढ़ा है, उनका अभ्यास बहुत है। 'धवल', 'जयधवल', 'महाधवल', का बहुत अभ्यास है। पृष्ठ-पृष्ठ का कह दे, बहुत अभ्यास। उन्होंने दो ही अभ्यास किया, एक इंजीनियर का, (उसे) छोड़कर यह किया। दूसरा कोई नाटक-फाटक, फिल्म-विल्म (कुछ नहीं)। युवा अवस्था, अभी विवाह करके आया था, पाँच दिन रह गया। अभी विवाह हुआ। साढ़े चार सौ-पाँच सौ का वेतन है। विवाह करके आया था, अभी पाँच दिन रह गया, उसका अभ्यास बहुत है। 'धवल', 'जयधवल', 'महाधवल', का बहुत अभ्यास, बहुत अभ्यास, याददाश्त भी बहुत है।

मुमुक्षु : विशेष प्रकार....

उत्तर : विशेष प्रकार नहीं, दृष्टि (बदले) बिना, विशेष प्रकार होता ही नहीं। यह तो पहले-पहले आया तब कहता था, महाराज! आप जो कहते हो, वह यथार्थ है। धवल में निमित्त प्रधानता से कथन है, क्योंकि शास्त्र में ऐसा लिखे, लो! 'समयसार' में तीसरी गाथा में (ऐसा लिखते हैं) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी भी स्पर्श नहीं करता। एक द्रव्य अपने अनन्त गुणों का चुम्बन करता है परन्तु अन्य द्रव्य का चुम्बन / स्पर्श नहीं करता। पण्डितजी! तीसरी गाथा में। 'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।' वहाँ टीका में (आता है) धवल में ऐसा लिया है कि आत्मा, आत्मा को स्पर्शता है, आत्मा परमाणु को स्पर्शता है, आत्मा धर्मास्तिकाय को स्पर्शता है - ऐसा पूरा एक स्पर्श द्वार लिया है परन्तु उसका अर्थ क्या? निश्चय है वह झूठा है? यह तो व्यवहार से (कहा है) स्पर्श का अर्थ संयोग है तो स्पर्श कहा है। स्पर्श क्या? समझ में आया? कथन की पद्धति है।

मुमुक्षु : एक को मानना और एक को नहीं मानना।

उत्तर : निश्चय को सत्य मानना और व्यवहार को उपचार से कथन मानना। तीसरी गाथा में 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' ने ऐसा कहा - एक पदार्थ अपने अनन्त धर्मों को, गुणों को चुम्बन करता है, आलिंगन

करता है, स्पर्श करता है परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के गुण-पर्यायों को कभी चुम्बन, आर्लिगन नहीं करता। समझ में आया? वहाँ ऐसा कहते हैं और (धवल में) ऐसा कहते हैं कि परमाणु, आत्मा को स्पर्श करता है; आत्मा, धर्मास्तिकाय को स्पर्श करता है। अरे! परन्तु आत्मा धर्मास्तिकाय को स्पर्श करता है - इसका अर्थ क्या? उस समय के संयोग को वहाँ स्पर्श कहा है, वरना स्पर्श है नहीं। वहाँ धवल में कथन की ऐसी पद्धति है, पूरा एक स्पर्श द्वार है। यह क्या है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं भगवान आत्मा... व्यवहारनय का विचार चञ्चल शुभ उपयोग बन्ध का कारण है। यह संसारदशा त्याग करने योग्य है और मोक्षदशा ग्रहण करने योग्य है, यह भी राग-द्वेष का विकल्प है। मोक्ष अच्छा है, यह राग का अंश है; संसार खराब है, यह द्वेष का अंश है। सत्य का स्थापन, ऐसा है, यह भी ज़रा राग का विकल्प है और ऐसा नहीं, ऐसा ज़रा द्वेष का अंश है। समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने कर्ता-कर्म अधिकार में लिखा है, ऐसा ही है न, अकेला ज्ञातास्वभाव में ऐसा है। सर्वज्ञ कहते हैं, वह तो इच्छा बिना वाणी निकलती है, उन्हें तो इच्छा नहीं है परन्तु यहाँ नीचे की भूमिका में (ऐसा कहे कि) ऐसा है, ऐसा नहीं है... अन्दर चारित्रमोह का अंश उत्पन्न होता है। उपादेय नहीं है, वह भी उपादेय नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं...

क्षणिक है, दुःखदायी है, अनित्य है, अशान्त है। अनित्य है न? वह त्रिकाली नहीं... अनित्य तो अपनी शुद्धपर्याय भी अनित्य है परन्तु वह दुःखदायी नहीं है; यह दुःखदायक है, इस अपेक्षा से अन्तर है। क्षणिक तो केवलज्ञान भी क्षणिक है, एक समय की पर्याय केवलज्ञान दूसरे समय वह नहीं रहती; वह नहीं, वैसी ही (दूसरी) होती है परन्तु वह दुःखदायक नहीं है। विकल्प है, वह दुःखदायक है, इतना अन्तर है। इसलिए अहितकर है, छोड़ने योग्य है। समझ में आया?

(नियमसार) पचासवीं गाथा में क्षायिक समकित

को हेय कहा, परभाव कहा, परद्रव्य कहा- उसका अर्थ उसका आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है, वह विकल्प दुःखरूप है। पर्याय दुःखरूप नहीं, क्षायिक समकित दुःखरूप नहीं; वह तो आनन्दरूप है। समझ में आया? ऐसे क्षणिक है, वह दुःखरूप है - ऐसा भी नहीं (क्योंकि) क्षणिक तो केवलज्ञान भी क्षणिक है, सिद्ध की पर्याय भी क्षणिक है, समस्त पर्यायें क्षणिक हैं। सिद्ध की एक समय की पर्याय सिद्ध रहती है, दूसरे समय दूसरी होती है, पर्याय पलटती है। ध्रुवरूप से कायम रहता है। एक समय की पर्याय अनन्त ज्ञान-दर्शन चतुष्टय प्रगट हुए वे एक समय रहते हैं, दूसरे समय दूसरे, तीसरे समय तीसरे, एक समय में दो पर्यायें नहीं रहतीं।

(यहाँ कहते हैं) यह विकल्प का अंश जो होता है कि यह ठीक, उसमें यह राग का भाग आता है, इस कारण वह ज्ञाता-दृष्टा में दखल उत्पन्न करनेवाला है। समझ में आया? भगवान का मार्ग, आत्मा का मार्ग ऐसा है। आँख की पलक में तो थोड़ी रज समाहित हो परन्तु इसमें तो नहीं समा सकती, ऐसा प्रभु का मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : यह सिद्धभगवान है- अरिहन्तभगवान है...

उत्तर : यह जानना दूसरी बात है परन्तु इसमें भेद करके लक्ष्य वहाँ गया तो विकल्प उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : सर्वज्ञ का ज्ञान तो जानता है।

उत्तर : (सर्वज्ञ) सब जानते हैं परन्तु उन्हें इच्छा नहीं है, राग नहीं है; राग नहीं न! यह रागी है, इसलिए राग उत्पन्न होता है। भेद का ज्ञान करना, इस भेद का ज्ञान करना, वह राग का कारण नहीं है परन्तु रागी है, इसलिए भेद का ज्ञान करता है, तो रागी है तो राग उत्पन्न होता है। भेद का ज्ञान करना, वह राग का कारण होवे तो सर्वज्ञ सब देखते (-जानते) हैं, (उन्हें राग उत्पन्न होना चाहिए) ऐसा नहीं है। यहाँ रागी प्राणी है, राग के अंश में पड़ा है; इस कारण भेद का लक्ष्य करता है तो राग आये बिना नहीं रहता।

इसमें (समयसार में) भी लिया है, सातवीं गाथा

में लिया है। पण्डित जयचन्द्रजी ने बहुत अच्छा लिया है, सब व्याख्यान हो गये हैं। सातवीं गाथा... 'व्यवहारेणुवदिस्सदि' है न! उसमें लिया है। (भावार्थ) 'यहाँ कोई कहे कि पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है, अवस्तु तो नहीं; तो उसे व्यवहार कैसे कहा जा सकता है?' दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो स्वयं की पर्याय है, उसे व्यवहार कैसे कहा जाए? समझ में आया? व्यवहार तो उसे कहें, समझ में आया? देखो! उसका समाधान। व्यवहार उसे कहते हैं कि अपने में न हो-ऐसे पर को व्यवहार कहते हैं। यह तो तुम अपनी पर्याय को व्यवहार कहते हो तो व्यवहार का अर्थ ऐसा होता है कि अवस्तु होता है। अपनी चीज नहीं, वह अवस्तु है तो पर्याय को आप अवस्तु कैसे कहते हो? अर्थात् आप व्यवहार कैसे कहते हो? व्यवहार कहते ही आपने अवस्तु कही... (ऐसा) शिष्य ने प्रश्न किया... तुमने व्यवहार क्यों कहा? तब तो अवस्तु हो जाती है। तो कहते हैं सुन! यह सही बात है, तेरी बात सही है, ऐसा कहकर कहते हैं।

'यह ठीक है किन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है। अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।' उसमें भेद है, अभेद में अन्दर गुण नहीं? परन्तु गुणभेद करने से विकल्प उत्पन्न होता है। 'भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है।' देखा! 'भेद को गौण करके व्यवहार कहा है। यहाँ ऐसा अभिप्राय है कि भेददृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी को विकल्प होते रहते हैं...' यह एक महासिद्धान्त है। 'इसलिए जहाँ तक रागादि दूर नहीं हो जाते, वहाँ तक भेद को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है...' फिर भेद जाने, तीन काल-तीन लोक जाने। भगवान एक-एक पर्याय सबको जानते हैं, यह राग का भेद जानना, वह राग का कारण नहीं परन्तु रागी प्राणी है और भेद पर लक्ष्य जाता है तो

विकल्प उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता, यह हेतु है।

इस कारण यहाँ कहा। भगवान तो एक-एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद को एक-एक को पृथक्-पृथक् जानते हैं। एक द्रव्य के अनन्त गुण, एक गुण की अनन्त पर्याय, एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद; ज्ञान में तो भगवान सर्व विशेष जानते हैं। विशेष जानना, वह कहीं राग का कारण नहीं है परन्तु नीचे उपयोग रागवाला है और रागी प्राणी है तो भेद का लक्ष्य करने से रागी को राग उत्पन्न होता है - ऐसी बात है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुमोदन है वह?

उत्तर : अनुमोदन नहीं, वह विकल्प है। वह रागी है न? तो वहाँ एकरूपता नहीं रही, अनेकता का लक्ष्य हुआ तो विकल्प ही उत्पन्न होता है। ज़रा समझना, अनेकरूप जानना, वह राग का कारण है, परन्तु रागी एकरूप को जाने, तब निर्विकल्प होता है और रागी है, इसलिए अनेक पर लक्ष्य जाए तब उसे विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग का-मोह का कारण है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं - 'वीतरागदशा प्राप्त करने के लिए व्यवहारनय के समस्त विचारों को बन्द करके केवल निश्चयनय द्वारा अपने को और जगत को देखना चाहिए।' अपने स्वरूप को भी निश्चय से देखना, उसका स्वरूप अभेद त्रिकालस्वरूप है, वैसा दृष्टि में लेना। (फिर) विशेष बात की है। 'जहाँ तक विचार है, वहाँ तक मन का विकल्प है।' वह इस प्रकार के, हाँ! 'जब विचार करने पर मन स्थिर हो जाए तब सहजस्वरूप में रमणता हो जाती है, स्वानुभव हो जाता है, इससे ही बहुत कर्मों की निर्जरा होती है, इसकी प्राप्ति को मोक्षमार्ग जानो, जब-जब स्वानुभव तब-तब मोक्षमार्ग।' मोक्षमार्ग त्रिकाल कायम तो है परन्तु स्वानुभव उपयोग हुआ तब मोक्षमार्ग हुआ।

'स्वानुभव के अतिरिक्त मन के विचार को और शास्त्र पठन को या काया के आचरण

को, महाव्रत-अणुव्रत के पालन को मोक्षमार्ग कहना यथार्थ नहीं है, व्यवहारमात्र है।' कथनमात्र है। भाई! क्या करे? स्वतन्त्र जीव है, उसे भी अनन्त तीर्थङ्कर आवे तो भी न बदले - ऐसा है और जब सुलटा पड़े, तब अनन्त परीषह आवे तो भी नहीं डिगे - ऐसा है। इन दोनों में आत्मा अडिग है, उसका इतना वीर्य है। 'अनुभवप्रकाश' में लिया है न? भगवान! तेरी शुद्धता तो बड़ी है परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी है। दीपचन्दजी ने लिया है। तेरी अशुद्धता भी बड़ी, अनन्त तीर्थङ्कर आवे, ज्ञानी आवे और समझावे तो भी तू अशुद्धता छोड़ दे ऐसा नहीं है। तू छोड़े उस दिन छूटेगी। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अपने में इतने दृढ़ हैं कि तलवार पड़े, वज्र प्रहार हो, सारी दुनिया में फेरफार हो जाए तो भी अपनी दृष्टि से और अपनी स्थिरता से वे डिगते नहीं हैं। सुलटे में भी ऐसा है और उलटे में भी ऐसा है। ताकत तो इसकी है या नहीं?

अणुव्रत के पालन को मोक्षमार्ग कहना व्यवहार है। 'जैसे सोने की म्यान में तलवार होवे, उसे सोने की तलवार कहते हैं उसी प्रकार।' तलवार तो लोहे की है। दृष्टान्त ठीक दिया है। समयसार का है, दृष्टान्त सब शास्त्रों के ही देते हैं, दृष्टान्त तो शास्त्र के ही देना चाहिए न? भले नाम न दे परन्तु शास्त्र का कथन होना चाहिए, घर की कल्पना (नहीं चाहिए)।

'स्वानुभव छूट जाए, तब साधक को निश्चय में अथवा द्रव्यार्थिकनय द्वारा शुद्ध तत्त्वों का विचार करना चाहिए।' ऐसा कहते हैं। बहुत लम्बी बात है। उपयोग न जमे तो व्यवहारनय का भी विचार करना... शास्त्र पढ़े, उपदेश दे। 'भावना यही रखना कि मैं शीघ्र ही स्वानुभव में पहुँच जाऊँ।'

मुमुक्षु : राग है, उतना तो बन्ध है न?

उत्तर : यथार्थरूप से जितना राग है, उतना बन्ध होता है न। चौथे, पाँचवें में अनुभव हुआ परन्तु अभी अबुद्धिपूर्वक राग है, अबुद्धिपूर्वक राग है। अनुभव से नहीं परन्तु जितना राग है, उतना बन्ध तो उसे भी है। छठवें गुणस्थान में थोड़ा बन्ध तो है न! है?

मुमुक्षु : राग साथ में ही होता है।

उत्तर : साथ में ही नहीं, वस्तुदृष्टि ऐसी है, स्थिर है परन्तु पूर्ण स्थिर नहीं, पूर्ण स्थिर होवे तो केवलज्ञान हो जाए।

मुमुक्षु : ..

उत्तर : होता है तथापि केवलज्ञान जैसी स्थिरता नहीं है। जब होता है, तब भी यथाख्यातचारित्र जैसी स्थिरता नहीं है, है ही नहीं। चौथे, पाँचवें, छठवें में यथाख्यातचारित्र जैसी स्थिरता होती ही नहीं। जितनी स्थिरता नहीं है, उतना अन्दर अबुद्धिपूर्वक का राग हुए बिना (नहीं रहता)।

मुमुक्षु : ...

उत्तर : यह दूसरी बात है। अन्दर में राग नहीं रहता.. राग बाकी है, राग बाकी है। राग बाकी न हो तो वीतराग हो जाए, केवलज्ञान (हो जाए)। एक क्षण में अनुभव हुआ, क्षण में अनुभव हुआ तो वहाँ पर्याय में वीतराग हो गया? वीतराग हुआ हो तो फिर राग आया कहाँ से? फिर वापस राग आया... वह राग अन्दर है। अनुभव करने में बुद्धिपूर्वक का राग नहीं है... अबुद्धिपूर्वक का राग उसी समय है परन्तु दृष्टि के जोर में ऐसा भी कहा जाता है कि अनुभवी को निर्जरा ही है, बन्ध है ही नहीं। यह तो दृष्टि की प्रधानता की मुख्यता से (कहा गया है) परन्तु उसे अन्दर राग बाकी है, उतना बन्ध तो दसवें (गुणस्थान) तक है। समझ में आया? गौण में जो (राग) है, उसका ज्ञान तो उसे होना चाहिए। स्थिरता हो जाए, एकदम अनुभव में पूर्ण स्थिरता (हो जाए) सिद्ध जितना आनन्द प्रगट हो जाए तो समाप्त हो गया। सिद्ध जितना नहीं, सिद्ध जैसा अंश है; सिद्ध जितना नहीं। इसलिए यहाँ कहते हैं, अपने स्वरूप में न रह सके, शुभभाव होवे परन्तु विचार तो अपने में रखना। अन्तर अनुभव कैसे हो? अन्तर में कैसे जाऊँ? ऐसी भावना रखना ही मोक्ष का उपाय है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके वचनामृत-२५२ पर भाववाही
प्रवचन, दि. २५-५-१९८३, प्रवचन
क्रमांक-११० (विषय : मार्गदर्शन)

प्रश्न :- तत्त्वका श्रवण-मनन करने पर भी
सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?

उत्तर :- सचमुच तो अन्तरमें रागके दुःखसे
थकान लगी ही नहीं, अतः विश्रामका-शान्तिका
स्थान हाथ ही नहीं आता। वास्तवमें अन्तरसे दुःखसे
थकान लगे तो अन्तरमें उतरने पर विश्रामका स्थान
हाथ लगे। सत्यके शोधकको सत्य न मिले-यह
सम्भव ही नहीं। २५२

प्रश्न है। 'तत्त्वका श्रवण-मनन करने पर भी
सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?' ऐसा प्रश्न है। हमारे
मुमुक्षुओं के लिये यह महत्त्व का प्रश्न है। सम्यग्दर्शन
का कारण गिनने में आता है ऐसी जो तत्त्वज्ञान विषयक
प्रवृत्ति, तत्त्व अभ्यास, श्रवण करने से, मनन करने से,
वाचन करने से अनेक प्रकार से तत्त्व का अभ्यास करने
पर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता? सामान्यतया:
तत्त्वज्ञान का अभ्यास सम्यग्दर्शन का कारण है। फिर
भी, सर्व जीवों को तत्त्वाभ्यास करने पर भी सर्व जीवों
को सम्यग्दर्शन प्राप्त हो ऐसा प्रत्यक्षरूप से बनता नहीं
है ऐसा देखने में आता है। बराबर है? तो उसके कारण
हैं। योग्यतावश अनेकविध प्रकार के उसके कारण है
और वह विषय बहुत विशाल है, गहरा है। यहाँ उसके
कोई कोई मुद्दे को स्पर्श कर के उत्तर दिया है।

उत्तर :- सचमुच तो अन्तरमें रागके दुःखसे
थकान लगी ही नहीं, अतः विश्रामका-शान्तिका
स्थान हाथ ही नहीं आता।' क्या कहते हैं? अनेक
कारण है उसमें से यह भी एक विशिष्ट अथवा खास

कारण है कि मुमुक्षु होनेपर भी अंतर से राग के दुःख
की थकान नहीं लगी। जो भी रागादि भावरूप परिणमता
है, प्रवर्तता है ऐसे चालू उदयभाव में उसे दुःख का वेदन
होता है, दुःख उत्पन्न होता है उस दुःख से छूटने के
लिये जो उसे थकान लगनी चाहिये (वह नहीं लगती
है)। थकान का अर्थ क्या है कि जो प्रवृत्ति करते हुए
उस प्रवृत्ति में थकान लगनेपर अथवा वह स्थिति आनेपर
वह प्रवृत्ति बंद हो जाये। थक जाने से बंद हो जाये।
पानी में डूबता हुआ मनुष्य तैरता हो, तैरना आता हो
ऐसा मनुष्य दरिया में हो और यदि तैरते-तैरते थक जाये
तो उसे बचना हो तो भी तैरने का कार्य नहीं कर
सकता। क्योंकि थक गया है।

हमारे मित्र हैं, तैरनेवाले हैं। मुंबई में रोज़ चौपाटी
के समुद्र में तैरने जाते हैं और एक माईल-दो माईल
समुद्र के अन्दर चले जाते हैं। ३६० दिन। बरसों से वह
प्रेक्टिस हो गयी थी। घंटों तक तैरते थे। सुबह जल्दी
जाये, घंटों तक तैरे। एक बार ऐसा हो गया। अभी तो
समुद्र में जाना बिल्कुल बंद हो गया है। बरसों तक वे

तिरे हैं। एक बार ऐसा हुआ कि दो-तीन माईल अन्दर गये होंगे। फिर वापस आ रहा था किनारे पर, उसमें थक गया। कभी थकान नहीं लगी थी। लेकिन ऐसा थक गया कि एकाद फर्लांग जितना किनारा दूर था, तो मुझे ऐसा लगा कि अब मैं डूब जाऊँगा। किनारे तक मैं तैरकर पहुँच पाऊँगा ऐसी परिस्थिति नहीं दिखती है। इतनी थकान लगी थी। बहुत मुश्किल से पहुँचा तब ऐसा लगा कि ज़िंदा नहीं रहता, लेकिन बच गया। कसम ले ली (कि) कभी समुद्र के पानी में तैरने नहीं जाना। बंद कर दिया। थकान का अर्थ ऐसा है कि बचना हो तो बच न सके। वह प्रवृत्ति ही छूट जाये। हो नहीं सकती, की नहीं जा सकती।

यद्यपि यहाँ तो मुमुक्षु जीव राग की प्रवृत्ति करना नहीं चाहता, इच्छता नहीं है परन्तु थकान तो ऐसी चीज है कि चाहे तो भी न हो सके। अनेकविध प्रवृत्ति में ऐसा है। तो यहाँ कहते हैं कि, जिसे राग का अभाव करके वीतरागता प्रगट करनी है, उसे अंतर से राग का जो दुःख उत्पन्न होता है उसकी यदि थकान लगे तो उसे अन्दर में आराम का स्थान, अभिराम का स्थान, शांति का स्थान हाथ लगे।

लाक्षणिक पद्धति से बात है कि, सामान्यतः जीव का ऐसा स्वभाव है कि जरूरत के बिना वह प्रयत्न नहीं करता। जबतक उसे जरूरत नहीं लगती तबतक वह प्रयत्न नहीं करता। उपेक्षा करता है। प्रयत्न करने के बजाय उपेक्षा करता है। पुनः उसमें भी जितनी जरूरत लगे उतना ही प्रयत्न करता है, बाकी की उपेक्षा करता है। ऐसा है। बाहर में सर्वत्र ऐसा बनता है कि नहीं? कम लाभ हो और कम कारण हो तो बहुत प्रवृत्ति नहीं करता। दुकान पर सामान्य ग्राहक आया हो तो बहुत दरकार नहीं करता। बड़ा ग्राहक आया हो तो पूरी दरकार करेगा। यह तो व्यापारी को अनुभवगोचर हो ऐसा विषय है।

वैसे यहाँ भी उसे राग के दुःख की पूरी थकान लगी हो कि अब किसी भी प्रकार से यह सहन हो ऐसा

नहीं है। असह्य परिस्थिति यदि उत्पन्न हो तो वह राग छूटे बिना, मिटे बिना, टूटे बिना नहीं रहेगा और वीतरागता का जो प्रयत्न है वह उत्पन्न हुए बिना न रहे। परन्तु जबतक सचमुच में अंतर से उस दुःख की थकान नहीं लगी है इसलिये विश्राम का स्थान जो स्वद्रव्य, त्रिकाली शुद्ध द्रव्य जो अनन्त अनन्त अनन्त.. शांतस्वभाव स्वरूप है, अनन्त शांति स्वभाव से ही जिसमें रही है, ऐसा शांति का स्थान उसे हाथ नहीं आता। ऐसा है, लो!

खोजता तो है, मुमुक्षु है इसलिये वह खोजता है। कहाँ खोजता है? कि शास्त्र में खोजता है। गुरु के पास जाता है, देव मन्दिर में जाता है, पूजा-भक्ति करता है। देव-गुरु और शास्त्र के पास वह शांति के लिये जाता है। शांति के लिये जाता है या दूसरा कोई कारण है? यदि अन्दर में दूसरा कारण हो तो उसकी तो यहाँ चर्चा नहीं करनी है। किसी अन्य लाभ के लोभ से जाता हो तो उसकी तो चर्चा करने का यह स्थान नहीं है। लेकिन कोई आत्मा की शांति के लिये देव-गुरु-शास्त्र के पास यानि बाह्य स्थान में, बाह्य प्रवृत्ति करता है, ये शास्त्र भी बाह्य पदार्थ है, उसके लिये जो प्रवृत्ति करता है वह भी बाह्य प्रवृत्ति है, उसके निमित्त से जो प्रवृत्ति है वह भी बाह्य प्रवृत्ति है, उसमें से शांति प्राप्त होगी ऐसा नहीं है।

यहाँ तो जो भी राग हो वह समस्त राग दुःखरूप है ऐसा उसे लगना चाहिये। चलते हुए राग के अनुभव में उसे दुःख लगना चाहिये। यदि दुःख लगे तो उसे वहाँ से छूटने का अवसर है। सामान्यः ऐसे तत्त्वज्ञान के अभ्यास के काल में कषाय की मंदता रहती है और इसीलिये जीवों को दुःख नहीं लगता है। मंद कषाय में दुःख नहीं लगता। कषाय तीव्र हो तब दुःख तीव्र होता है तब दुःख लगता है, परन्तु कषाय की मंदता में दुःख नहीं लगता है। यहाँ धोखा खाता है।

वास्तव में तो आत्मा को जो शांतस्वभाव है वह शांतस्वभाव है, ऐसा शांतस्वभाव का विकल्प है उसमें अशांति है। दूसरी बात तो रही, लेकिन स्वरूप की

शांति सम्बन्धित, स्वभाव की शांतता सम्बन्धित विकल्प का उत्थान है, राग का उत्थान है वह दुःखभाव है। वह भी शांतस्वरूप परिणाम नहीं है। वह शांति का परिणाम नहीं है। वहाँ से हटने की जिसकी तैयारी हुई है वह विकल्प में नहीं रुकेगा। विकल्प में दुःख लगने के बजाय मंद कषाय की शांता में सुख लगे तब तो वह जीव उसमें अटक जाता है। वह ऐसा विचार करता है कि मैं बारंबार ऐसा आत्मतत्त्व का विचार करूँ, अन्य विचार न करूँ। ऐसे नीचे देखता है। अन्य विचार न करूँ, सांसारिक कार्यों के विचार न करूँ, सांसारिक प्रवृत्ति के विचार न करूँ, परन्तु मैं आत्मा का विचार तो करूँ। कहते हैं कि, अभिप्रायसहित करनेवाले को तो बड़ा दोष है। अभिप्रायसहित करनेवाले को तो बड़ा दोष है। जहाँ दुःख लगना चाहिये वहाँ दुःख न लगे तो वह अवश्य वहाँ अटकेगा और वहाँ से छूटने का अवसर नहीं आयेगा। बहुत मुद्दे की बात ली है। यह विषय तो बहुत विशाल है लेकिन पूरी धारावाही बात ले ली है।

मुमुक्षु की भूमिका में भी उत्पन्न होते हुए जो कोई राग के परिणाम हैं उस राग के परिणाम में उसे दुःख लगना चाहिये। सूक्ष्म विकल्प हो या स्थूल विकल्प हो, तीव्र विकल्प हो या मंद विकल्प हो। स्थूलता में और तीव्रता में दुःख विशेष है, भले मंद विकल्प में मंद दुःख है लेकिन है दुःख। उसमें शांति और सुख नहीं है, यह बात तो उसे स्पष्टरूप से लगनी चाहिये। दुःख तो लगने का विषय है। ये कहते हैं न? आप बोले इसलिये मुझे दुःख लगा। दुःख लगने का विषय है।

‘वास्तवमें अन्तरसे दुःखसे थकान लगे तो अन्तरमें उतरने पर विश्रामका स्थान हाथ लगे।’ यह नियम लिया है। सर्व साधकों की पूर्वस्थिति ऐसी है। पूर्वपर्याय ऐसी है। जो कोई साधकजीव सम्यग्दर्शनादि धर्म को प्राप्त हुए, आदि यानी ज्ञान-चारित्र लेना, उन सर्व धर्मात्माओं की धर्म प्राप्ति की पूर्वपर्याय ऐसी ही होती है, नियम से। यह सिद्धांतिक बात है। सर्व के लिये यह सिद्धांत है। क्योंकि राग में नियम से दुःख है।

सम्यग्दृष्टि को तो राग में दुःख लगता ही लगता है। क्योंकि उनको तो स्वाभाविक सुख का अंश प्रगट है। और प्रगट सुख वर्तता होने से उन्हें तो प्रगट राग के दुःख के साथ वीतरागता का सुख मिलान-तुलना हो ही जाती है। इसलिये उनको तो धोखा खाने का प्रसंग नहीं है। भले ही वे भक्ति के, उत्सव के राग में नाचता-राचता हुआ दिखाई दे। ऐसा प्रसंग बने। सौधर्म इन्द्र नाचता है न? तीर्थकरदेव भगवान का जन्मोत्सव करता है (तब)। सौधर्म का आयुष्य बड़ा है। मनुष्य का आयुष्य छोटा है। अनेक तीर्थकरों का जन्म होता है, अनेक तीर्थकरों का जन्मोत्सव करता है। प्रत्येक प्रसंग में नाचे, उसे ऐसी ही भक्ति आती है। राग में खड़ा है। सम्यग्दृष्टि होनेपर भी उसकी राग की स्थिति है, आंशिक राग की। नाचता है। किसी को ऐसा लगे कि ये राग में राचता है। नाचता नहीं है, परन्तु उसके परिणाम में तो राचना हो रहा है। अज्ञानी की भाँति उसे राचना नहीं होता। उसको वह दुःखभाव है। दुःख लगता है। वह भी मनुष्यपर्याय चाहता है। देवानुप्रिय। मनुष्यपर्याय का दूसरा नाम है देवानुप्रिय। देवों को भी जो प्रिय है वह चाहता है। खास कर के सम्यग्दृष्टि जीवों को ऐसी भावना होती है।

मुमुक्षु :— दुःख लगता है तो क्यों करते हैं?

पूज्य भाईश्री :— करते नहीं है, हो जाता है। स्वजन की मृत्यु हो तब किसी को रोने का दुःख करना नहीं है, चाहते नहीं परन्तु रोना आ जाता है। लेकिन हर समय? जितनी बार मृत्यु हो उतनी बार? पहला पुत्र मर गया हो बाद में दूसरा पुत्र मर जाये तो? कम होता है? कि ज्यादा—डबल होता है? एक तो गया और ये दूसरा गया। अरे..रे..! वह तो उदयभाव ही ऐसा है। उस प्रकार का उदय हो तब उसका उदय अनुसार परिणाम होता है। करता नहीं है परन्तु हो जाता है, यह बात है वहाँ। हर्ष-शोक दोनों परिणाम हो जाते हैं।

वास्तव में तो ज्ञानी या अज्ञानी के परिणाम तो उसके स्वकाल अनुसार हो जाते हैं। ज्ञानी, हो जाता है

ऐसा जानते हैं, अज्ञानी करता हूँ ऐसा जानता है। वह उसका अज्ञान है। वह कर्तृत्वबुद्धि की। मैं करता हूँ इसलिये होता है और न करूँ तो नहीं होता, करूँ तो हो और न करूँ तो न हो। यह उसकी भ्रमणा है, अज्ञान है।

क्या कहते हैं? 'वास्तवमें अन्तरसे दुःखसे थकान लगे तो अन्तरमें उतरने पर विश्रामका स्थान हाथ लगे।' यह अन्दर ही अन्दर का विषय है ऐसा कहते हैं। जिसे अन्दर से थकान लगती है ऐसा लिया है। ऊपर-ऊपर से थकान लगती है वह दूसरा विषय है ऐसा कहते हैं। अन्दर से थकान लगती है वह दूसरा विषय है, ऐसा कहते हैं। एक कृत्रिम थकान लगती है और एक सचमुच में थकान लगती है। एक तो प्रवृत्ति चलते चलते... भक्ति का राग है। एक पद गाये, दूसरा पद गाये, तीसरा पद गाये, चौथा पद गाये-यूँ ही लंबाये। आधा घंटा, एक घंटा, डेढ़ घंटा, दो घंटा। फिर ऐसा लगे कि अब बंद करते हैं। तो वह थकान, कोई अन्दर की थकान नहीं है। वह प्रवृत्ति की थकान है, वह राग की थकान है वह वास्तव में अन्दर की थकान नहीं है।

उसे राग उत्पन्न होते समय उस राग के दुःख का वेदन होना चाहिये। राग में दुःख भासित होना चाहिये। भासित होना चाहिये यानी कि वेदन होना चाहिये। ऐसे उसे अन्दर की थकान कहते हैं। वह वास्तविक है। पहलेवाला काल्पनिक है और यह वास्तविक है। इस प्रकार अन्दर से दुःख की थकान लगे। भेदज्ञान में यह प्रकार है, प्रक्रिया है।

जब जीव भेदज्ञान का पुरुषार्थ करता है अथवा भेदज्ञान के पुरुषार्थ में प्रवर्तता है तब, उसे प्रतिक्षण उत्पन्न होते हुए राग में दुःख लगता है। और दुःख लगता है इसलिये मंद राग होनेपर भी उसमें वह कषाय की मंदता में विश्राम नहीं लेता, स्थिर विश्राम नहीं करता। अटकता नहीं है, उलटा उसको उसमें दुःख होने से निषेध आता है। ये नहीं, ये नहीं, ये राग नहीं। भले आत्मा के स्वभाव का विकल्प हो तो भी उस विकल्प

में उसे दुःख लगता है। ऐसी यह अंतरंग क्रिया है।

यहाँ अंतर अंतर शब्द दो जगह लिया न? अन्दर से दुःख की थकान लगती है उसे अन्दर जाने से विश्रामस्थान हाथ आता है। ऐसा लिया। यह बात गुरुदेवश्री ने अत्यंत अनुभवपूर्ण कही है कि, अन्दर में जिसे शांत-स्थल हाथ लगता है वह कहाँ से हाथ लगता है? वैसे तो अनादि के अज्ञानी जीव को स्वयं का स्वस्थान मिलता नहीं है। अपने आत्मा को अन्दर में ध्रुव आत्मा को खोजने जाये तो उसे मिलता नहीं है। मिलता है? यहाँ पुकार पुकारकर कहते हैं लेकिन अन्दर केसा ध्रुव आत्मा? क्यों मिलता नहीं है? ऐसा लगता है। भास नहीं होता। वह कब हाथ लगे? ऐसा कहते हैं। हाथ लगना यानी ग्रहण होना। हाथ यानी इस हाथ का सवाल नहीं है। हाथ लगना यानी पकड़ में आना, पकड़ में आना यानी ग्रहण होना। ज्ञान में 'मैं ऐसा आत्मा' ऐसा कब ग्रहण हो? कि रागरस परिणाममें से मिटे तब। रागरस परिणाम में कब मिटे? कि जब राग में दुःख लगे तब। अन्यथा तो उसका जो अनादि का रस चढ़ा है वह रस उसका मिटता नहीं है।

किसी को रागरस चढ़ता है तब वह बाह्य रागादि प्रवृत्ति में जोश से प्रवर्तता है। कोई उसी तरह बढ़ते हुए क्षयोपशम के रस में चढ़ता है तब वह क्षयोपशम में जोश से परिणमता है। ये दोनों विभावरस हैं। दोनों परिणाम इन्द्रिय द्वारा प्रवर्तते हैं इसलिये अतीन्द्रिय परिणाम से विरुद्ध जाति के, अतीन्द्रिय परिणाम से विजातीय, दूर जाना हो ऐसे वह परिणाम हैं। उसमें आगे बढ़ने जैसा नहीं है। ऐसा है। (२२:०० मिनट तक)

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित 'अनुभव संजीवनी' ग्रन्थमें से
चयन किये गये ज्ञानदशा-अज्ञानदशा समीक्षा सम्बन्धित वचनानामृत

अज्ञानदशामें, पूर्वपुण्यके उदयसे संयोगरूप सामग्री क्षणिक/अनित्य होने पर भी - नित्यरूप भासित होती हैं; जैसे कि 'यह सबकुछ' मेरे साथ हमेशा रहनेवाला है; अतः उसका तथारूप रस - परिणति बन जाती है; जबकि उससे विरुद्ध -

ज्ञानदशामें, पुण्य-योगसे बाह्य-वैभवमें ज्ञानी होते हैं तो उसमें, खुदकी नित्यतापूर्वक - अनित्यताका भान उन्हें रहता है। अतः उनको इसमें रस नहीं आता, बल्कि ज्ञानपरिणति यथावत् रहती है। (७४)

अन्य जीव और पुद्गलकी चित्र-विचित्र अवस्थाका निमित्त पाकर जगतमें जीव राग-द्वेष / इष्ट-अनिष्टरूप भाव करते हैं। जब कि सम्यक्ज्ञानमें अंतर्मुखका ध्येय - द्रव्यदृष्टि वर्तती होनेसे, उन-उन परद्रव्यकी पर्यायें मात्र ज्ञेयरूप प्रतिभासित होती हैं। ज्ञान तटस्थ - ज्ञाता भावसे रहता है। ध्येयकी अर्थात् ध्रुव स्वरूपकी मुख्यता रहती है, इसलिये अन्य ज्ञेय गौणरूपसे भासित होते हैं। यह वीतरागी ज्ञानकला है-अबंध परिणाम हैं, परिणाममें ऐसी चाल होना/ ढलन होना-परिणमनशीलता होना, ऐसा ही जिसका मूल स्वभाव है। ऐसे गुण निधान महा पवित्र निज आत्मदेवको अभेद भक्तिसे नमस्कार!! (९३)

मिथ्यात्वके सद्भावमें मति-श्रुतज्ञानका क्षयोपशम पर रस - वेदन बढ़नेमें निमित्त बनता है; वही क्षयोपशम सम्यक्त्वके सद्भावमें, कषायरस तूटनेसे व अकषाय स्वरूपमें स्थिरता - रस बढ़ जानेसे, स्वसंवेदनरस/आत्मरस बढ़नेमें निमित्तभूत होता है। -यह स्वसंवेदन पूर्ण स्वसंवेदनका ही अंग है-अनंतसुखका मूल है। साधकदशामें निज परम पदमें सुस्थित आत्मवैभवको देखनेवाला मति-श्रुत है। (१४५)

विपरीत श्रद्धानसे जीवको परमें, सुख नहीं होनेके बावजूद भी, सुखका विश्वास/प्रतीत है। इसलिये पर विषयको सुखबुद्धिसे भोगनेसे सुखका (आभासरूप) अनुभव होता है। परन्तु वास्तविकतामें वह सुख नहीं होनेसे किसीको भी तृप्ति नहीं होती। आत्मिकसुखकी गटागटीसे (अनुभवसे) प्रतीत होते ही पूरा जीवन बदल जाता है। वह जीव परमें कहीं भी सुखके कारण धोखा नहीं खाता। (२४०)

ज्ञानमयभाव वह अविकार आत्ममय भाव है। वैसे भावमें रागादि विकार करनेका स्वभाव नहीं होनेसे, मोह भावमें (अचारित्र भावमें) निरूत्साह रहता है, अर्थात् उत्सुकता तो नहीं होती, परन्तु वह भाव आत्माको स्वभावमें स्थापित करता है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि स्वरूपका अज्ञान ही आत्माको रागादिभावमें प्रेरित करता है - उत्साहित करता है, ज्ञायकपनेमें रहनेमें भाव प्रतिबंध नहीं है। पुनः वह ज्ञानमयभाव रागद्वेषके प्रवाहको रोकनेवाला भाव है, और द्रव्यकर्मके प्रवाहका अवरोधक है। (४५०)

शास्त्र पढ़ने की रीत

सत्शास्त्र आत्मानुभवी पुरुषों द्वारा लिखे गये होनेसे उनकी लेखनीमें अनुभवकी गहराई भरी है, उसका अवलोकन अनुभवके दृष्टिकोणपूर्वक करना चाहिए, वरना इनके भावोंका वाच्य ज्ञानगोचर नहीं हो सकता। सिर्फ अनुभवदृष्टिसे ही यथार्थरूपसे वाच्यभूत भाव ज्ञानगम्य होते हैं, ऐसा शास्त्रवाचनका मर्म है। सिर्फ पंडिताईसे यानी कि परलक्षी ज्ञानके उघाड़से प्राप्ति नहीं होगी, इसलिए शास्त्रवाचन अनुभवप्रधान शैलीसे कर्तव्य है। शब्दार्थ-भावार्थसे संतुष्ट नहीं होना। (१९९९)

वाचक शब्दसे वाच्य सधता है, परन्तु वाच्य सधने पर ज्ञानरसका उत्पन्न होना आवश्यक है, तभी शब्दके अर्थकी यथार्थता है, अन्यथा 'मात्र उघाड़' कार्यकारी नहीं है। वास्तवमें तो ज्ञानरस है, वह आत्मरस है।

(१) 'द्रव्यश्रुतका सम्यक् अवगाहन भावश्रुतको साधता है।' - 'अन्भव प्रकाश'

(२) 'द्रव्यश्रुतके सम्यक् अवगाहनसे श्रद्धागुणज्ञता प्राप्त होती है; जिससे परमार्थ सधता है।' (पृष्ठ संख्या : ४६ 'अनुभव प्रकाश')

इस प्रकार निमित्त-उपादानकी संधि है। (२०२८)

समयसार का हार्द

'श्री समयसारजी' शास्त्रमें आचार्य भगवंतने अस्ति-नास्ति दोनों पहलूसे विषय स्पष्ट किया है।

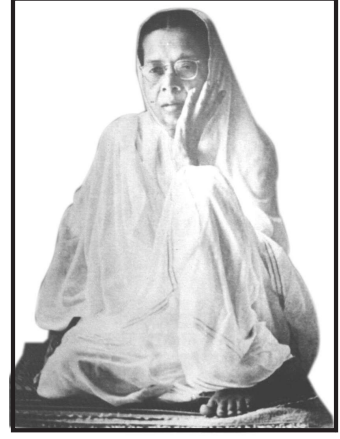
अस्तिसे - दृष्टिका विषयभूत स्वभाव और स्वभावदृष्टिका अनुभववर्ण निरूपण है। - स्वभाव दृष्टिवंतके दृष्टिके परिणामनकी मुख्यतावाले पहलूको अद्भूत रीतिसे प्रदर्शित किया है - यही समयसारका हार्द है।

नास्तिसे - मिथ्यात्व और अज्ञान टालनेकी बात मुख्य है। अनेकविध शैलीसे है। (२०२६)

सही जीवनकला

संसारमें जीवको पूर्वकर्मका उदय सदा ही रहता है। प्रायः जीव स्वरूप सावधानीके अभावमें दुःखी होकर नये कर्म बंधनका नुकसान करता है। जीव यदि मुक्त होनेका अभिलाषी हो तो प्राप्त उदयके निमित्तसे आत्म प्रत्ययी फ़रार्थ करके संसार तिर सकता है। अतः उदयसे चिड़चिड़ानेकी जरूरत नहीं है परन्तु उदयका लाभ लेने जैसा है। यह सही जीवनकला है। (१८२५)

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. ११-C



मुमुक्षु :- .. ऐसा भी आता है और भवस्थिति, क्रमबद्ध सब है, इन तीनों का किस तरह मेल है? माताजी! कृपा करके समझाइये।

समाधान :- भवस्थिति आदि नाम लईं छेदो नहीं पुरुषार्थ। भवस्थिति होती है, परन्तु पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध होता है। स्वयं पुरुषार्थ करे उसप्रकार की भवस्थिति होती है। तू स्वयं पुरुषार्थ कर, फिर भवस्थिति का नाम क्यों लेना है? भवस्थिति का नाम मात्र लेता है। भवस्थिति का नाम लेकर स्वयं बचाव करता है। पुरुषार्थ करना नहीं है, इसलिये भवस्थिति, काललब्धि पकेगी तब होगा, ऐसा उसका बचाव क्यों करता है? तू पुरुषार्थ कर। यदि तुझे आत्मा की दरकार हो, यदि तुझे परमार्थ स्वरूप आत्मा प्रगट करना हो तो तू पुरुषार्थ कर। यथार्थपने पुरुषार्थ कर, फिर होता है कि नहीं तू देख। हुए बिना रहेगा ही नहीं। पुरुषार्थ के साथ भवस्थिति को, क्रमबद्ध को सब को सम्बन्ध होता है। जैसा स्वयं का पुरुषार्थ उस प्रकार का ही क्रमबद्ध होता है। उस जातिकी भवस्थिति होती है और वह भवस्थिति बदल जाती है, यदि तू पुरुषार्थ कर तो। कर्म जैसे होंगे वैसा होगा, कर्म उदय में आये, ऐसी काललब्धि पकी नहीं है, उदय ऐसे है कि हो नहीं सकता है, ऐसे सब बचाव करता है तो तुझे अन्दर लगी नहीं है।

यदि आत्मा की लगन लगी हो तो पुरुषार्थ पर ही तेरा भाव जाये कि मैं पुरुषार्थ करूँ। ऐसा कभी बनता है कि स्वयं पुरुषार्थ करना चाहे, स्वयं आत्मा प्राप्त करना चाहे और हो नहीं? ऐसा तो बनता नहीं। प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र हैं। तो आत्मा पराधीन हो जाये, ऐसा नहीं है। पुरुषार्थ करे उसी प्रकार भवस्थिति होती है। उसी प्रकार क्रमबद्ध होता है। सब ऐसे ही होता है। सबको पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है।

करना सो मरना अर्थात् तू परपदार्थ का कर्ता नहीं है, तू ज्ञाता है। किसी भी पदार्थ को बदलने की तेरे में शक्ति नहीं है। तू तो ज्ञाता है। उसका अर्थ ऐसा है कि तू पुरुषार्थ मत कर, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। जहाँ ज्ञायक होता है वहीं पुरुषार्थ आ जाता है। अनादि की जो कर्ताबुद्धि थी उसे तोड़कर ज्ञायक हुआ, ज्ञातृत्व जहाँ आ गया, ज्ञाताधारा प्रगट हो गयी वह पुरुषार्थसे ही होती है, वह बिना पुरुषार्थ नहीं होता। कर्ताबुद्धि यानी तू पुरुषार्थ मत कर ऐसा उसका अर्थ नहीं है। करना सो मरना अर्थात् तू परपदार्थ का कर्ता नहीं है। तू विभाव का कर्ता ज्ञान अवस्था से नहीं है, तू विभाव का कर्ता अज्ञान अवस्थासे है। ज्ञान अवस्थासे नहीं है। लेकिन तू ज्ञाता हो जा उसमें पुरुषार्थ आ ही जाता है। तू अन्दर ज्ञाता का पुरुषार्थ कर, अन्दर लीनता का (पुरुषार्थ कर), ज्ञाता हो जा, लीनता का पुरुषार्थ कर उसी प्रकार राग और विभावपर्याय सब उसही प्रकारसे होनेवाली है। तू उसे बदल नहीं सकता इसलिये तू ज्ञाता हो जा। पर ऊपरसे दृष्टि छोड़ दे और स्व पर दृष्टि रख और ज्ञायक हो जा, फिर जो होनेवाला होगा सो होगा। स्वयं फेरफार होते हैं। तू ज्ञायक की दृष्टि कर, तू ज्ञाताधारा प्रगट कर। तू अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र सब प्रगट करने में तू स्वाधीन है। परपदार्थ को बदलने की तुझ में शक्ति

नहीं है। परन्तु ऐसा सम्बन्ध है कि यदि तू ज्ञाता हो तो उसमें स्वयं पलटना होता है। कर्म पलटते हैं, विभाव उदय में पलटना होता है, सब का पलटना होता है। उसे ज्ञायक की धारा के साथ सम्बन्ध है। तुझे ज्ञाता नहीं होना है और तू बचाव करता है कि ऐसे उदय हैं। उदय पलटे बिना रहेगा नहीं, तू ज्ञायक हो जा तो सब उदय स्वयं पलट जायेंगे। जड़ में पलटेंगे, परन्तु तेरी जो विभाव की पर्याय राग-द्वेष की होती है वह भी पलट जायेगी, सब पलट जायेगा। उसका उदय आये इसलिये तुझे जुड़ना ही पड़े ऐसा नहीं है। तेरे पुरुषार्थ की मन्दतासे जुड़ता है। तू ज्ञाता हो जा, तू अंतर में पुरुषार्थ कर तो वह सब फेरफार स्वयं होते हैं।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ की ही मुख्यता है, ऐसा आपको कहना है?

समाधान :- पुरुषार्थ की ही मुख्यता है। तू कर तो सब फेरफार हो जायेंगे। क्रमबद्ध होगा, भवस्थिति वैसी होगी और विभाव भावकर्म का उदय भी तेरी ज्ञाताधारा होगी वैसे आयेंगे। तेरी भूमिका अनुसार ही सब आयेंगे।

मुमुक्षु :- सब अपने आप ही..

समाधान :- बाकी सब पलट जायेगा।

मुमुक्षु :- पलटने योग्य सब पलट जायेगा।

समाधान :- सब पलट जायेगा। तेरी भूमिका अनुसार सब पलट जायेगा।

मुमुक्षु :- बाकीके चारों समवाय एकसाथ होते हैं।

समाधान :- सब एकसाथ है, एकसाथ उसका सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- ज्ञाताधारा प्रगट करने के लिये क्या करना ?

समाधान :- ज्ञाताधारा प्रगट करने के लिये पुरुषार्थ करना। आत्मा की लगनी लगानी। मैं ज्ञायक हूँ ऐसी श्रद्धा करनी। वह श्रद्धा, तत्त्व का विचार करना, निर्णय करना वह सब पुरुषार्थसे होता है। लेकिन वह पुरुषार्थ कौन करे ? जिसे लगी हो वह करे। जिसे आत्मा की अंतर में लगी हो और अन्दरसे सुख प्रगट करना हो, ज्ञायक का स्वभाव ज्ञातारूप प्रगट करना हो वह पुरुषार्थ करता है। जिसे करना नहीं है वह तो बचाव करता है।

(३९:०० मिनिट तक, तत्त्वचर्चा का शेष
अगले अंक में...)



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, पात्रता के लक्षण सम्बन्धित
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के
चयन किये गये वचनामृत

(आत्मप्राप्ति कैसे होवे ? - इस विषय में जिज्ञासापूर्वक पूछे गये प्रश्न का विस्तृत उत्तर :-)

रुचि में खरेखर अपनी जरूरत लगे तब अपनी वस्तु की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती। चौबीसों घण्टों चिंतन में-बेचिंतन में एक यही (स्वरूप का घोलन) चलता रहे। जिस विषय की रुचि होती है, वह विषय सैकड़ों बाह्य कार्य करते हुए भी चलता ही रहता है। बाहर का उपयोग तो ऊपरी-ऊपरी तौर से चलता है, उसमें जाग्रति नहीं रहती; जिस विषय की रुचि है उसी में जाग्रति रहती है। सैकड़ों कार्य करते रहने पर भी सभी की गौणता ही रहा करती है; मात्र रुचि का विषय ही सदा मुख्य रहता है।

विकल्पात्मक विचार में भी 'शरीराकार चैतन्यमूर्ति' को टाँक दो.... 'मैं तो यही हूँ।' सुख-दुःख की जो कोई पर्याय हो, उसकी उपेक्षा रखो। 'मैं तो यही हूँ'-विचार चले, उसकी भी गौणता रखो मैं तो वैसा का वैसा ही चैतन्यमूर्ति हूँ-बस! यही दृढ़ता करते रहो।

सुनना, शास्त्र पढ़ना आदि सभी की गौणता होनी चाहिए; एकांत का ज्यादा अभ्यास रहना चाहिए (ताकि स्वरूपघोलन बढ़े।)

यह (सम्यक्त्व) प्राप्त नहीं हुआ तो जीव निगोद में चला जाएगा-ऐसे निगोद के भय से, अपना कार्य करना चाहे तो वो यथार्थ नहीं। परंतु (अभिप्राय में) निगोद की अवस्था हो या सिद्ध की, 'मेरा' तो कुछ भी बिगाड़-सुधार नहीं ('मैं' अवस्थारूप नहीं,) - ऐसी 'मैं' अचलित वस्तु हूँ-ऐसी श्रद्धा जम जानी चाहिए। पर्याय कैसी भी हो उसकी उपेक्षा ही रहनी चाहिए।

'परद्रव्य के साथ में तो कुछ संबंध ही नहीं' ऐसा तो पक्ष होना चाहिए; बाद में वस्तु (त्रिकाली ध्रुव) और परिणाम (उत्पाद-व्यय) इन दो के विचार में ही सब समय लगा देना है।

चौबीसों घण्टों....बस यही (स्वरूप का घूँटण) चलना चाहिए। प्रवृत्तिभाव को गौण करके इस एक ही की मुख्यता चलनी चाहिए-यही प्रयास निरंतर चलना चाहिए। २५०.

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (दिसम्बर-२०२१) का शुल्क डॉ. श्री महेशभाई महेता, मुंबई, ह. धर्मेन्द्रभाई वोरा, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

२८४

ववाणिया, आसोज सुदी ६, गुरु, १९४७

१. परसमयको जाने बिना स्वसमयको जाना है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

२. परद्रव्यको जाने बिना स्वद्रव्यको जाना है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

३. सन्मतितर्कमें श्री सिद्धसेन दिवाकरने कहा है कि जितने वचनमार्ग हैं उतने नयवाद हैं, और जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय हैं।

४. अक्षय भगत कविने कहा है-

‘कर्ता मटे तो छूटे कर्म, ए छे महा भजननो मर्म, जो तुं जीव तो कर्ता हरि,
जो तुं शिव तो वस्तु खरी, तुं छो जीव ने तुं छो नाथ, एम कही अखे झटक्या हाथ।।’

२८५

ॐ

ववाणिया, आसोज सुदी ७, शुक्र, १९४७

अपनेसे अपनेको अपूर्व प्राप्त होना दुष्कर है; जिससे प्राप्त होता है, उसका स्वरूप पहचाना जाना दुष्कर है, और जीवका भुलावा भी यही है।

इस पत्रमें लिखे हुए प्रश्नोंके उत्तर संक्षेपमें निम्नलिखित हैं-

१, २, ३ ये तीनों प्रश्न स्मृतिमें होंगे। इनमें यों बताया गया है कि-“(१) ठाणांगमें जो आठ वादियोंके वाद कहे हैं उनमेंसे आपको और हमें किस वादमें दाखिल होना चाहिये? (२) इन आठ वादोंसे कोई भिन्न मार्ग अपनाने योग्य हो तो उसे जाननेकी आकांक्षा है। (३) आठों वादियोंके मार्गका एकीकरण करना ही मार्ग है या किस तरह? अथवा उन आठ वादियोंके एकीकरणमें कुछ न्यूनाधिकता करके मार्ग ग्रहण करने योग्य है? और तो क्या?”

ऐसा लिखा है, इस विषयमें कहना है कि इन आठ वादके अतिरिक्त अन्य दर्शनोंमें-सम्प्रदायोंमें मार्ग कुछ(अन्वित) जुड़ा हुआ रहता है, नहीं तो प्रायः भिन्न ही (व्यतिरिक्त) रहता है। वह वाद दर्शन, सम्प्रदाय ये सब किसी तरह प्राप्तियों कारणरूप होते हैं; परंतु सम्यग्ज्ञानीके बिना दूसरे जीवोंके लिये तो बन्धन भी होते हैं। जिसे मार्गकी इच्छा उत्पन्न हुई है उसे इन सबका साधारण ज्ञान करना, पढ़ना और विचार करना, तथा बाकीमें मध्यस्थ रहना योग्य है। साधारण ज्ञानका अर्थ यहाँ यह समझे कि सभी शास्त्रोंमें वर्णन करते हुए जिस ज्ञानमें अधिक भिन्नता न आयी हो वह।

‘तीर्थकर आकर गर्भमें उत्पन्न होते हैं अथवा जन्म लेते हैं तब या उसके बाद देवता जानते हैं कि ये तीर्थकर हैं? और जानते हैं तो किस तरह?’ इसका उत्तर यह है की जिन्हें सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ है वे देवता ‘अवधिज्ञानसे’ तीर्थकर को जानते हैं, सभी नहीं जानते। जिन प्रकृतियोंके नाशसे ‘जन्मतः’ तीर्थकर अवधिज्ञान संयुक्त होते हैं वे प्रकृतियाँ उनमें दिखायी न देनेसे वे सम्यग्ज्ञानी देवता तीर्थकरको पहचान सकते हैं। यही विज्ञापन है।

मुमुक्षुताके सन्मुख होनेके इच्छुक आप दोनोंको यथायोग्य प्रणाम करता हूँ।

प्रायः परमार्थ मौनमें रहनेकी स्थिति अभी उदयमें है और इसी कारण तदनुसार प्रवृत्ति करनेमें काल व्यतित होता है, और इसी कारणसे आपके प्रश्नोंके उत्तर ऊपर संक्षेपमें दिये हैं।

शांतमूर्ति सौभाग्य अभी मोरबीमें है।

